B.A. III Hindi Hons.

रस निष्पत्ति

डॉ॰ सतीश चन्द्र पाठक.
प्राध्यापक :- हिन्दी विभाग, एस॰एम॰ कॉलेज, जहानाबाद

हिन्दी प्रतिष्ठा के छात्र होने के नाते आपको अब तक रस के सम्बन्ध में कुछ-न-कुछ अनुमान जरूर हो गया होगा। 'रस' सच पूछा जाए तो भारतीय मनीषा की अत्यन्त उच्च कोटि की अवधारणा है। प्राचीन संस्कृत साहित्य में रस का विवेचन-विश्लेषण इतने व्यापक एवं विराट पैमाने पर हुआ है कि मन आश्चर्य से भर उठता है। यह कहना कठिन है कि विश्व के किसी अन्य भाषा के साहित्य में किसी भी विषय का इतना गहन विवेचन हुआ होगा। भारतीय काव्यशास्त्र का मूल आधार यह 'रस' है। यह जितना व्यापक और महत्वपूर्ण है इसका विवेचन भी उतना ही जटिल एवं विशाल है।

जैसा कि बतलाया गया कि भारतीय काव्यशास्त्र का केन्द्रीय तत्व यह रस है जिसके प्रथम आख्याता आचार्य भरत मुनि हैं। यद्यपि इनके पूर्व भी अनेक आचार्य हो गये हैं जिन्होंने रस पर विचार किया है किन्तु उनके ग्रंथ इत्यादि आज किन्हीं कारणों से उपलब्ध नहीं हैं। चूंकि भरत मुनि की व्याख्या सूत्र के रूप में उपलब्ध है जिसके कारण इन्हें रसशास्त्र का प्रथम आख्याता स्वीकार किया जाता है। आचार्य भरत ने एक सूत्रवाक्य दिया है जिसमें रस के अंगों-उपांगों और उनके विनियोग की रूपरेखा प्रस्तुत की गयी है -

"विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रस निष्पत्तिः।"

इसका अर्थ है "विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है।" इस सूत्र में 'संयोग' और 'निष्पत्ति' विशिष्ट अर्थ धारक हैं अतः इनकी व्याख्या भिन्न-भिन्न आचार्यों द्वारा भिन्न-भिन्न रूपों में की गयी है। जिन आचार्यों ने जिन रूपों में इन दोनों शब्दों का अर्थ ग्रहण किया है उन्हीं के अनुरूप उन आचार्यों के नाम पर भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय बन गये हैं।

आचार्य भरत ने 'संयोग' शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है - "जिस प्रकार नानाविध व्यंजनों से संस्कृत अन्न का उपभोग करते हुए प्रसन्नचित्त पुरुष रसों का आस्वादन करते हैं और हर्ष आदि का अनुभव करते हैं, उसी प्रकार प्रसन्न प्रेक्षक विविध भावों एवं अभिनयों द्वारा व्यंजित वाचिक आंगिक एवं सात्विक अभिनयों से संयुक्त स्थायी भावों का आस्वादन करते हैं और हर्ष आदि को प्राप्त होते हैं।

इनकी इस व्याख्या में प्रतीत होता है कि उन्होंने संयोग शब्द का अर्थ - 'संसर्ग' या संगम के रूप में लिया है

भरतमुनि ने निष्पत्ति की व्याख्या निम्न रूप में की है - " जिस प्रकार नाना भांति के व्यंजनों, औषधियों तथा द्रव्यों के संयोग से भोज्य रस की निष्पत्ति होती है, जिस प्रकार गुड़ादि द्रव्यों, व्यंजनों और औषधियों से षडवादि रस बनते हैं उसी प्रकार विविध भावों से संयुक्त होकर स्थायी भाव भी रस रूप को प्राप्त होते हैं।"

उपर्युक्त व्याख्या में 'निष्पत्ति होती है', 'रस ~~बनते~~ बनते हैं' और 'रस रूप को प्राप्त होते हैं'. तीन क्रियाएं विचारणीय हैं। प्रथम दो क्रियायें लौकिक रसों से सम्बद्ध हैं जबकि अंतिम क्रिया नाट्य या काव्यरस से सम्बद्ध है। इस व्याख्या से इतना तो स्पष्ट होता ही है कि नाट्य या काव्यरस लौकिक रसों के समान न तो निष्पन्न होता है और न बनता है। बल्कि रसरूपता को प्राप्त होता है। इस प्रकार भरत के अनुसार 'निष्पत्ति' का काव्य या नाट्य रस के सन्दर्भ में अर्थ हुआ - निःशेष रूप से स्थिति प्राप्त करना अर्थात् सिद्धि। इस प्रकार भरत के अनुसार उनके सूत्र का अर्थ हुआ - विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों का स्थायी भाव के साथ संयोग या संसर्ग होने से रस की सिद्धि होती है।